दैनिक भास्कर

Date: 16-07-16

आज़ादी मांगें पर अलगाव की बातें बंद करें

जैसा हमेशाहोता आया है, वैसा ही अब भी हो रहा है। बुरहान वानी की मौत के बाद हिंसा भड़की। लगभग 40 लोग मारे गए, 1400 घायल हो गए। कर्फ्यू लग गया। हालात काबू में गए। अखबारों के मुखपृष्ठों से खिसककर कश्मीर अंदर के पन्नों पर चला गया। टीवी चैनलों के लिए कई ताज़े मुद्दे उभर आए। कश्मीर में चलने वाली दोतरफा हिंसा इतनी लंबी और उबाऊ हो गई है कि लोग अब उसकी खास परवाह भी नहीं करते। सरकार को कोई रास्ता सूझ रहा है और कश्मीर के अलगाववादियों को! दोनों ही एक अंधी और अनंत सुरंग में प्रवेश कर गए हैं।

मुफ्ती साहब और महबूबा मुफ्ती ने जब भाजपा के साथ मिलकर जम्मू-कश्मीर में सरकार कायम की तो आशा जगी थी कि हिंसा घटेगी और कोई राह निकलेगी। महबूबा ने विधानसभा में जो बयान दिए, उनसे यह आशा बलवती हुई थी, लेकिन दो साल खाली निकल गए, केंद्र सरकार ने क्या किया? उसने करोड़ों-अरबों रुपए देने की घोषणा की, लेकिन यह ऐसा ही है कि जैसे किसी का पैर टूट जाए तो उसकी हड्डी जुड़वाने की बजाय उसे आप काजू-किशमिश खिलाने लगें। असली सवाल यह है कि कश्मीर के भारत-विरोधी रवैए से निपटने के लिए आपने क्या किया? पुलिस और फौज कश्मीर की हिंसा को कब तक दबाती रहेगी? वह थोड़े दिन दबेगी। मौका पाते ही फिर भड़क उठेगी। फौज जितनी मुश्किलों में कश्मीर में डटी रहती है, उसकी कल्पना करना भी कठिन है। फौजियों से ज्यादती भी हो सकती है, लेकिन पुलिस तो कश्मीरी ही है। कश्मीर के 83 हजार जवान चप्पे-चप्पे में तैनात हैं।

आखिर ये कश्मीरी पुलिस वाले भी अपने कश्मीरी भाई-बहनों पर गोलियां क्यों चलाते हैं? यह सरकारी हिंसा इसीलिए होती है कि यह जवाबी हिंसा है। यदि बेकाबू भीड़ थाना लूटती है, हथियार छीनती है, पत्थर बरसाती है, बम फोड़ती है, आगजनी करती है, पुलिस वालों को नदी में धकेल देती है तो आप फिर पुलिस और फौज से क्या उम्मीद करते हैं? वानी की मौत या अफजल गुरु को फांसी हो तो कश्मीरी जनता को गुस्सा आएगा, लेकिन उसे तय करना चाहिए कि वह उसे कैसे प्रकट करेगी? यदि वह हिंसा

पर उतारू होगी तो उसे प्रतिहिंसा के लिए तैयार रहना होगा।

लेकिन क्या यही कश्मीर की समस्या का समाधान है? नहीं, बिल्कुल नहीं। यदि अलगाववादी सोचते हैं कि वे आतंक-हिंसा के जरिये कश्मीर को भारत से अलग कर सकते हैं तो मैं कहूंगा कि वे बहुत बड़ी गलतफहमी में हैं। क्या उन्हें पता नहीं है कि उनके पास हिंसा की जितनी ताकत है, उससे हजार गुना ताकत भारत के पास है। अगर उन्हें पाकिस्तान की मदद का भरोसा है तो उन्हें क्या मैं यह याद दिलाऊं कि पाकिस्तान सारे पैंतरे आजमा चुका है। वह घुसपैठिया मुठभेड़ कर चुका है, सीधा युद्ध कर चुका है, महाशक्तियों के तलवे चाट चुका है, आतंकी भेज चुका है, संयुक्त राष्ट्र संघ में छाती कूट चुका है। अब उसके पास कोरी बयानबाजी के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है। वह कश्मीर को ढोते-ढोते थक चुका है। उसके बलूच, उसके सिंधियों, उसके पठानों और उसके अपने आतंकियों ने उसकी नाक में दम कर रखा है। उसके कब्जे के कश्मीरी भी उसके साथ नहीं रहना चाहते हैं, इसीलिए उस कश्मीर को वह 'आजाद कश्मीर' कहता है। उसके मुख्यमंत्री को वह 'प्रधानमंत्री' कहता है। इन 'प्रधानमंत्रियों' में से कई ने मुझे कहा है कि उनकी हैसियत नगरपालिका-अध्यक्ष के बराबर भी नहीं है।

ऐसे पाकिस्तान के दम पर हमारे कश्मीर के अलगाववादी कब तक मासूमों का खून बहाते रहेंगे? वे हजार साल तक लड़ते रहेंगे तो भी सफल नहीं हो सकते। क्या वे नगालैंड, मिजोरम और खालिस्तानी आंदोलनों से कोई सबक लेना चाहेंगे? इन सब हिंसक आंदोलनों को चीन और पाकिस्तान की सक्रिय मदद मिलती रही, लेकिन वे ठप हो गए या नहीं? पाकिस्तान के फौजी रणनीतिकार यह समझे बैठे हैं कि जैसे बांग्लादेश उनसे अलग हो गया, वैसे ही कश्मीर को भी भारत से अलग किया जा सकता है। रावलपिंडी की कई बैठकों में मैंने उन्हें समझाया कि एक तो भारत, पाकिस्तान नहीं है और दूसरा कश्मीर पूर्वी पाकिस्तान नहीं है। यह तुलना ही गलत है। जहां तक जनमत-संग्रह का सवाल है, उसे संयुक्त राष्ट्र ने ही झटक दिया है, लेकिन आप उसी पर जोर देते हैं तो आप पहले अपना कश्मीर खाली करें और वहां जनमत-संग्रह करवाएं।

पाकिस्तान जनमत-संग्रह करवाएगा और ही भारत! कश्मीरी भीड़ कभी अहिंसक होगी और ही भारतीय फौज! तो क्या किया जाए? इस बंद गली में से जो रास्ता मुझे सूझता है, वह यह है। यदि दोनों कश्मीरों के लोग सच्ची आजादी और शांति चाहते हैं तो सबसे पहले वे हिंसा और आतंक का रास्ता छोड़ें। दूसरा, वे आजादी जरूर मांगें, लेकिन अलगाव की बात बंद करें। दोनों कश्मीरों के नागरिक वैसे ही आजाद रहें, जैसे दिल्ली और लाहौर के नागरिक हैं। प्रधानमंत्री रहते हुए नरसिंह राव ने लाल किले से कहा था कि स्वायत्तता (आजादी) आकाश तक असीम है। तीसरा, दोनों कश्मीरों को एक करें। भारत और पाकिस्तान के बीच वे खाई नहीं, पुल बनें। क्या महबूबा मुफ्ती, उमर अब्दुल्ला या हुर्रियत के नेता ऐसी कोई पहल कर सकते हैं?

हमारी सरकार से भी मुझे कुछ कहना है। वह सिर्फ गोली के सहारे रहे। बोली का सहारा भी ले। वह हुर्रियत वालों, पाकिस्तान परस्तों, गुस्साए कश्मीरियों और आतंकियों से भी सीधी बात करे। पाकिस्तान की फौज और सरकार से भी कश्मीर पर डटकर संवाद करे। वह आगे होकर कश्मीर का मुद्दा उठाए। कतराए नहीं। कश्मीर के मुद्दे पर भारत पीड़ित पक्ष है। यदि भारत इस मुद्दे पर पहल नहीं करेगा तो कौन करेगा? क्या यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कश्मीर का मुद्दा हमेशा पाकिस्तान आगे होकर उठाता है और भारत बगले झांकता है? कश्मीर के सवाल पर भारत का पक्ष बेहद मजबूत है, लेकिन भारत की लगभग सभी सरकारें दब्बूपन का परिचय देती रही हैं। यदि दोनों कश्मीरों, भारत और पाकिस्तान में सीधी बात हो तो हल जल्दी निकलेगा। यदि बात ज्यादा चलेगी तो लात कम चलेगी। यह सिद्ध हुआ मनमोहन सरकार के जमाने में। यदि जनरल मुशर्रफ साल-दो साल और टिके रहते तो शायद 4 सूत्री समझौते में से कश्मीर का हल निकल आता। हल तो नहीं निकला, लेकिन हिंसा जरूर कम हुई।

(येलेखक के अपने विचार हैं।)

संदर्भ... भारत,पाकिस्तान कश्मीरी और हिंसा-प्रतिहिंसा के परे समस्या का शांतिपूर्ण समाधान

वेदप्रताप वैदिक

दैनिक जागरण

Date: 16-07-16

सहयोग का नया अध्याय

स्वतंत्रता के बाद से ही देश में केंद्र-राज्य संबंधों में कुछ तनाव की स्थिति रही है। भारत के प्रथम गृहमंत्री सरदार पटेल द्वारा 558 देसी रियासतों के भारत में विलय की जटिल प्रक्रिया के कारण अनेक राज्यों के मध्य अंतरराज्यीय समस्याएं भी अक्सर गंभीर स्वरुप लेती रही हैं। शुरू में केंद्र और राज्यों

में कांग्रेस का शासन होने से इन समस्याओं का समाधान दलीय स्तर पर आसानी से ढूंढ़ लिया जाता था, लेकिन जब राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकारें बनने लगीं तो वे केंद्र द्वारा संवैधानिक अतिक्रमण का शिकार होने लगीं। इसका ज्वलंत उदाहरण केरल में नंबूदरीपाद की साम्यवादी सरकार थी जो 1957 में चुनी गई थी। 1959 में तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष इंदिरा गांधी के दबाव में उनके पिता प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने अनुच्छेद 356 के अंतर्गत केरल सरकार को भंग कर वहां राष्ट्रपति शासन लगा दिया। तबसे अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग, राज्यपालों के हस्तक्षेप, वित्तीय आवंटन में दलीय आधार पर भेदभाव, संघीय सरकार द्वारा शक्तियों के केंद्रीयकरण और गैर संवैधानिक संस्थाओं द्वारा राज्यों के विकास में अनाधिकृत हस्तक्षेप आदि मुद्दे केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव बढ़ाते रहे हैं।

राज्यों में भी आपस में कई मुद्दों पर भी अनेक विवाद रहे हैं जैसे असम-नागालैंड सीमा विवाद, मराठी-भाषी क्षेत्रों के कर्नाटक में विलय पर महाराष्ट्र-कर्नाटक विवाद, मनगढ़ पहाडियों के स्वामित्व पर गुजरात-राजस्थान विवाद, कन्नड़ भाषी कासरगोड के केरल में विलय को लेकर केरल-कर्नाटक विवाद, मतदाताओं के पहचान को लेकर ओडिशा-पश्चिम बंगाल विवाद। अभी भी कई राज्यों के बीच सीमा संबंधी विवाद भी उभरते रहते हैं। उत्तर-पूर्वी राज्यों के बीच भी अनेक मसलों पर पारस्परिक विवाद हैं। विवाद होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य है कि ऐसे विवादों के समाधान हेतु संवैधानिक मंचों की उपेक्षा कर उसे गैर संवैधानिक अभिकरणों द्वारा हल करने का प्रयास। नेहरू ने योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद और राष्ट्रीय एकता परिषद जैसे गैर संवैधानिक अभिकरण बनाए जिन्हें संघ-राज्य सबंधों और विभिन्न राज्यों के मध्य संबंधों को बेहतर बनाने की जिम्मेदारी दी गई। धीरे-धीरे इन अभिकरणों का प्रभुत्व इतना बढ़ गया कि नीति-निर्माता और जनता, दोनों ही भूल गए कि इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 263 के अंतर्गत एक अंतरराज्यीय परिषद का गठन मई 1990 में किया जा चुका है। विडंबना यह रही कि मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली संप्रग सरकार के दस वर्ष के कार्यकाल में इसकी केवल दो बैठकें 2005 और 2006 में हुईं। पिछले दस वर्षों से अंतरराज्यीय परिषद की कोई बैठक नहीं हुई है जबकि नियमत: इस परिषद की प्रतिवर्ष तीन बैठकें होनी चाहिए। स्पष्ट है कि विभिन्न राज्यों के आपसी झगड़ों के समाधान और संघीय सरकार से साझा मुद्दों पर विमर्श और शिकायतों के निस्तारण हेतु इस संवैधानिक मंच का सदुपयोग नहीं हुआ। 16 जुलाई 2016 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अंतरराज्यीय परिषद की बैठक बुलाई है जिसमें प्रधानमंत्री और उनके मंत्रिमंडल के 17 मंत्रियों के अलावा सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री या प्रशासक हिस्सा लेंगे। वे अपनी समस्याएं रखेंगे और विभिन्न मुद्दों पर साझा नीतिगत दृष्टिकोण अपनाने की कोशिश करेंगे। परिषद राज्यों के मध्य विवादों की जांच, साझा हितों पर विचार-विमर्श और विभिन्न नीतियों और उठाए कदमों पर पारस्परिक समन्वय के लिए सिफारिश करेगी। विडंबना यह है कि यह बैठक ऐसे समय होने जा रही है जब अरुणाचल में कांग्रेस की सरकार को बहाल किए जाने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले के कारण मोदी सरकार विपक्षी दलों

के निशाने पर है। उम्मीद है कि अरुणाचल का मसला अंतरराज्यीय परिषद की बैठक को अधिक प्रभावित नहीं करेगा।

संविधान राज्यों के मध्य विवादों का समाधान करने हेतु सर्वोच्च न्यायालय को अधिकृत करता है। केवल जल विवाद पर अलग से ट्रिब्यूनल की व्यवस्था है जिसे उच्च न्यायालय का दर्जा मिला है और जिसका निर्णय अंतिम है। उसके फैसले को सर्वोच्च न्यायालय भी नहीं बदल सकता, लेकिन क्या राज्यों के मध्य विवादों के विधिक समाधान से बेहतर राजनीतिक समाधान नहीं? क्यों न राज्यों और केंद्र में आपसी सहमति से समाधान हो खासतौर पर तब जबकि संविधान सम्मत अंतरराज्यीय परिषद का मंच उपलब्ध है? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि देश का वज़ूद सभी राज्यों से मिलकर ही है जैसा कि संविधान का अनुच्छेद 1 कहता है, भारत अर्थात इंडिया, राज्यों का संघ होगा। सभी राज्य भारत रूपी शरीर के अंग जैसे हैं। यदि कोई भी अंग कम विकसित है तो शरीर स्वस्थ नहीं होगा। इसलिए संघीय सरकार की कोशिश यही होनी चाहिए कि बिना राजनीतिक या क्षेत्रीय भेदभाव के सभी राज्यों का समानांतर विकास हो। संभवत: मोदी सरकार ने पीएम-सीएम टीम की अवधारणा इसी दृष्टिकोण से बनाई है। यह जरूरी है कि गैर-भाजपा शासित राज्यों के मुख्यमंत्री राजनीतिक द्वेष से उपर उठ कर केंद्र सरकार की इस पहल का लाभ लें और अपने-अपने राज्यों के विकास में आने वाली बाधाओं को अंतरराज्यीय परिषद में गंभीरता से एवं दलगत राजनीतिक हितों से परे हटकर उठाएं।

पीएम-सीएम टीम से विकास को तेज करने का प्रथम संकेत तब मिला जब मोदी सरकार ने 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों को मानते हुए केंद्रीय करों में राज्यों की हिस्सेदारी 32 प्रतिशत से बढ़ा कर 42 प्रतिशत कर दी जिससे राज्य अपनी विकास योजनाओं और लक्ष्यों को राज्य की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं परिभाषित कर सकें। इसी के साथ अगले पांच वर्षों में पंचायत और नगरपालिकाओं को दी जाने वाली राशि को भी बढ़ा कर 2.87 लाख करोड़ रुपये कर दिया गया। यह वित्तीय प्रयास 'सहयोगी-संघवाद' को और ऊर्जावान बनाएगा। यदि राज्य सरकारों को वित्तीय संकट से मुक्त कर दिया जाए तो उनके पास विकास न कर पाने का कोई बहाना नहीं होगा। मोदी ने सभी राज्यों को विकास की स्पर्धा में शामिल करने का प्रयास किया है। मोदी ने राजनीतिक खेल के नियमों में गुणात्मक बदलाव कर दिया है। राजनीति में रहना है तो विकास करो, नहीं तो बाहर जाओ। भ्रष्टाचार मुक्त और सुशासन युक्त व्यवस्था दो, नहीं तो बाहर जाओ। इस बदलाव से विभिन्न मुख्यमंत्रियों पर जिम्मेदारी आ गई है कि वे भी अपने भ्रष्ट मंत्रियों और नौकरशाहों पर लगाम लगाएं, क्योंकि विकास के मद में धन जितना ज्यादा होगा, भ्रष्टाचार का अंदेशा भी उतना ही ज्यादा होगा। अंतरराज्यीय परिषद वह मंच हो सकता है जो संघीय व्यवस्था में नया प्राण फूंक सके और न केवल संघ और राज्यों के बीच, वरन विभिन्न राज्यों के मध्य भी सहयोग एवं समन्वय का एक नया अध्याय लिख सकें।

[लेखक डॉ. एके वर्मा, राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं]

Date: 16-07-16

चीन ने खड़ी की नई चुनौती

स्थायी मध्यस्थता न्यायाधिकरण यानी पीसीए ने दक्षिण चीन सागर से जुड़े मसले पर सर्वसम्मति से अपना बहुप्रतीक्षित फैसला सुना दिया। यह फैसला मुख्यत: ऐतिहासिक अधिकारों की भूमिका, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन संबंधी समुद्री हक और चीन की विभिन्न गतिविधियों के कानूनी पहलू पर विचार के बाद दिया गया। संयुक्त राष्ट्र के समुद्री कानून संबंधी संधि के अनुच्छेद 296 और आठवीं अनुसूची के अनुच्छेद 11 के तहत यह फैसला अंतिम और बाध्यकारी है। चीन ने प्रारंभ से ही पूरी प्रक्रिया को भेदभावपूर्ण बताते हुए फैसले को अवैधानिक करार दिया। यद्यपि चीन ने तमाम राजनीतिक और कूटनीतिक प्रयासों के द्वारा अपने पक्ष को रखने का पुरजोर प्रयास किया था, किंतु उसे अपेक्षित सफलता हासिल नहीं हुई। फैसले के बाद चीन ने उसे सिरे से खारिज कर दिया और नजरअंदाज करने की अपनी प्रतिबद्धता दोहराई। ऐसे में पहले से अत्यंत जटिल दक्षिण चीन सागर की कूटनीतिक और सामरिक चुनौतियां बहुत गंभीर हो गई हैं। पीसीए के निर्णय के बाद उपजे हालात से निपटना एक बड़ी चुनौती है।

पीसीए अवार्ड ने स्पष्ट किया कि चीन का दक्षिण चीन सागर के जल और प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर ऐतिहासिक अधिकार नहीं है। न्यायाधिकरण ने चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्र के दावों को खारिज करते हुए स्पष्ट किया कि विवाद वाले इलाके का कोई भी द्वीप चीन के विस्तारित समुद्री क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आएगा। चीन ने फिलीपींस के विशेष आर्थिक क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर उसकी संप्रभुता का हनन किया और अवैध तरीके से न केवल उसके मछुआरों को रोका, बल्कि कई मौकों पर उसके पोतों ने टकराव का संकट पैदा किया है। न्यायाधिकरण ने यह भी पाया कि चीन ने समुद्री पर्यावरण को अपूर्णीय क्षति पहुंचाई है। यह सच्चाई भी है, क्योंकि फिलीपींस के विशिष्ट आर्थिक क्षेत्र में एक बड़े कृत्रिम

द्वीप का निर्माण कर चीन ने वास्तविक परिस्थिति को बदल दिया है और पर्यावरण के गंभीर नुकसान को अनदेखा किया है। चीन के आक्रामक रुख और उसकी संदिग्ध हरकतों ने दक्षिण चीन सागर को क्षेत्रीय अस्थिरता का गढ़ बना दिया है।

पीसीए के फैसले के बाद यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि अंतरराष्ट्रीय कानूनों की अवहेलना कर रहा चीन किस तरह के विश्व की परिकल्पना कर रहा है? यद्यपि इस मामले में चीन के सभी दावों को दरकिनार करते हुए पीसीए ने कानूनी स्थिति स्पष्ट कर दी है, लेकिन उसके फैसले पर अमल कराना असंभव है। चीन ने न केवल इस फैसले को अस्वीकार किया है, बल्कि अपने दावे वाले समुद्री इलाके को हर कीमत पर संरक्षित करने की प्रतिबद्धता भी दोहराई है। हालांकि अंतरराष्ट्रीय कानूनों की अनदेखी करने वाला चीन पहला देश नहीं है और ऐसा पहली बार नहीं हो रहा है। अमेरिका ने भी, जो आज समुद्री कानून संबंधी संधि की दुहाई दे रहा है, अतीत में ऐसे ही फैसले को मानने से इंकार कर दिया था। कुल मिलाकर अमेरिका चीन पर एक सीमा से अधिक दबाव डालने की स्थिति में नहीं है। यही स्थिति अन्य प्रमुख देशों की भी है, लेकिन दक्षिण चीन सागर की समस्या को सुलझाना भी होगा।

यह भी यक्ष प्रश्न है कि दक्षिण चीन सागर पर अपनी नीति को लेकर ढिठाई पर आमादा चीन के साथ क्या व्यवहार किया जाए? इसी तरह यह भी एक सवाल है कि क्या दक्षिण चीन सागर एशिया प्रशांत क्षेत्र में टकराव का जरिया बना रहेगा। ऐसे आसार हैं कि अगले कई वर्षों तक दक्षिण चीन सागर का मसला आसियान क्षेत्र में शांति और सुरक्षा के लिए शायद सबसे बड़ा खतरा बना रहेगा। ऐसे कौन से कदम उठाए जाएं कि क्षेत्रीय शांति बरकरार रहे और अंतरराष्ट्रीय कानूनों की धज्जियां भी न उडें? इस पेचीदा सवाल का आसान जवाब नहीं है। भारत-बांग्लादेश विवाद से इस मसले की तुलना कर चीन को नसीहत देना कारगर नहीं होगा। दक्षिण चीन सागर विवाद में छह देश अपना अपना दावा करते हैं और इस फैसले का प्रभाव अन्य देशों पर भी होगा। सामरिक, आर्थिक और भौगोलिक कारणों से दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण समुद्रों में से एक होने के नाते कई प्रमुख देश इस समुद्री मार्ग पर निर्भर हैं और उनके व्यापक हित दक्षिण चीन सागर से जुड़े हुए हैं। चूंकि सैन्यबल के आधार पर इसका समाधान नामुमकिन है इसलिए इस फैसले ने सभी प्रमुख देशों को एक मौका दिया है कि वे कूटनीतिक और राजनीतिक समाधान तलाशें। पड़ोसी का चयन नहीं

किया जा सकता और दक्षिण चीन सागर विवाद से चीन के अपने पड़ोसी देशों संबंध प्रभावित होंगे। सैन्य बल के प्रदर्शन से माहौल और भी खराब होगा। ऐसे में देखना है कि संबंधित देशों के नेता मिल बैठकर कोई राजनीतिक समझ विकसित कर पाते हैं या नहीं? यह बहुत कुछ चीन के रवैये पर निर्भर करेगा। मुश्किल यह है कि ऐसे आसार हैं कि चीन दक्षिण चीन सागर में वायु रक्षा पहचान क्षेत्र की घोषणा कर सकता है। व्यापक क्षेत्रीय हित में चीन को ऐसा करने से बचना चाहिए, क्योंकि टकराव की एक छोटी सी चिंगारी भयंकर आग का रूप ले सकती है, जिस पर काबू पाना कठिन होगा। आपसी प्रतिद्वंद्विता और तनाव के माहौल में इसकी पूरी आशंका है कि अगर चीन ने संयम नहीं बरता तो टकराव की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। ऐसे में समुद्र में अनियोजित मुठभेड़ों से संबंधित आचार संहिता पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। किसी भी अनहोनी या संघर्ष को रोकने के लिए तात्कालिक उपाय आवश्यक हैं।

आसियान देशों को आपसी सहमति से चीन को राजनीतिक संदेश दिया जाना चाहिए। चीन तमाम तरह की घरेलू समस्याओं से घिरा है। चूंकि उसकी अर्थव्यवस्था की गति धीमी हो रही है इसलिए उसके द्वारा किसी तरह के सैन्यबल का प्रयोग उसके लिए ही आत्मघाती हो सकता है। चीन ने संबंधित देशों के साथ नए सिरे से वार्ता के लिए संकेत दिए हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि संबंधित देशों के नेता राजनीतिक परिपक्वता का परिचय देंगे। दक्षिण चीन सागर विवाद आसियान एकता का एक लिटमस टेस्ट है और इस समूह के क्षेत्रीय मामलों में अपनी भूमिका की क्षमता को साबित करने का एक अवसर। आने वाले समय में सबकी निगाहें इस पर टिकी होंगी कि इस मुद्दे पर आसियान किसी संयुक्त बयान पर सहमति बना पता है या नहीं?

[लेखक राजीव रंजन चतुर्वेदी, नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ सिंगापुर के इंस्टीट्यूट ऑफ साउथ एशियन स्टडीज में रिसर्च एसोसिएट है]